एक और भामाशाह—
श्री जमनालाल बजाज

सन् १६२० में नागपुर कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। वर्धा के प्रसिद्ध सेठ जमनालाल जी, जो उस समय 'रायबहादुर' और आनरेरी-मैजिस्ट्रेट' भी थे, उसके स्वागताध्यक्ष थे। उस अधिवेशन में विशेष रूप से महात्मा गांधी के असहयोग प्रस्ताव पर विचार किया गया और निश्चय किया गया कि विदेशी सरकार से समस्त प्रकार का संबंध और व्यवहार बंद करके, उसे विवश किया जाय कि भारतवर्ष को स्वराज्य अधिकार देने में अधिक विलंब न करे। इस प्रस्ताव के पास होने पर जमनालाल जी ने सबसे पहले अपनी 'रायबहादुरी' और 'आनरेरी मैजिस्ट्रेटी' छोड़ने की घोषणा की।

इसी अवसर पर उन्होंने महात्मा गांधी से कहा कि "यद्यपि आपके चार पुत्र हैं, तो भी मुझे अपने पाँचवे पुत्र के रूप में स्वीकार कर लें!" दूसरे शब्दों में इसका अर्थ था कि आप मुझे गोद (दत्तक) ले लें। यद्यपि एक ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो आकार और वजन की दृष्टि से गांधी जी की अपेक्षा लगभग ड्यौढ़े होंगे, इस प्रकार की 'गोद' लेने की प्रार्थना सुनने वालों को अनोखी जान पड़ी और गांधी जी भी एक बार आश्चर्य में पड़ गये, पर उनका आग्रह देखकर इसकी स्वीकृति दे दी।

यद्यपि जमनालाल जी चार वर्ष की आयु में वर्धा के सेठ बच्छराज जी द्वारा पोते के रूप में गोद लिये गये थे, पर उस समय उनको इस परिवर्तन का कोई ज्ञान न था। पर इस बार 'दत्तक पुत्र' होते समय दोनों पक्षों को इस बात के महत्त्व और परिणामों का अच्छी तरह ज्ञान था। जमनालाल जी ने गांधी जी को अपना 'पिता' मानकर, अपनी समस्त संपत्ति उनको समर्पित कर दी। इससे गांधी जी के समस्त कार्यक्रम और राष्ट्रीय आंदोलन पर बड़ा प्रभाव

पड़ा। यदि गांधी जी के भारतव्यापी आंदोलन की आर्थिक व्यवस्था के लिए जमनालाल जी स्वयं लाखों रुपया निकालकर न देते और लाखों रुपया दूसरों से इकट्ठा न करा देते, तो न मालूम उस युग में हमारे राष्ट्र की गतिविधियाँ क्या हो जातीं ? इसका कुछ अनुमान उस समय कांग्रेस-फंड को जमा करने और उसके कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के निम्न विवरण से विदित हो सकता है—

कांग्रेस के अर्थ-व्यवस्थापक—

सन् १९२१ के आरंभ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने विजयवाड़ा के अधिवेशन में निश्चय किया था कि "कांग्रेस के चार आने वाले एक करोड़ सदस्य बनाने चाहिए, कांग्रेस के 'तिलक स्वराज्य फंड' में एक करोड़ रुपया इकट्ठा होना चाहिए और देश भर में बीस लाख चर्खे चलने चाहिए।" पर जब इस कार्यक्रम की पूर्ति में संदेह होने लगा और जून तक केवल ४० लाख रुपया ही इकट्ठा हो सका, तो यह निश्चय किया गया कि कुछ लोग शेष ६० लाख रुपया को संग्रह करने की व्यक्तिगत जिम्मेदारी उठायें और उसमें जो कमी पड़े, उसे अपने पास से पूरा करें। उस समय जमना लाल जी को कांग्रेस का कोषाध्यक्ष बनाया गया था और इस कारण इस कार्य की सफलता का उनको ही सबसे अधिक ध्यान था। वे स्वयं एक बड़े प्रसिद्ध व्यापारी थे और मारवाड़ी समाज के अधिकांश प्रसिद्ध व्यापारियों से उनका तरह-तरह से घनिष्ट संबंध था। इसलिए उन्होंने देशभर में पत्र लिखकर कांग्रेस के निर्णय का प्रचार किया और अधिक परिश्रम करके एक करोड़ का फंड जमा करके दिखा दिया। उस अवसर पर उन्होंने जबलपुर के सेठ गोविंददास को लिखा था—

"स्वराज्य-फंड के लिए यह निर्णय किया गया है कि आगामी ३० जून तक एक करोड़ चंदे की रकम के लिए खूब उत्साह के साथ भरसक प्रयत्न किया जाए। अभी तक ४० लाख का चंदा आया होगा, ऐसा अनुमान है। यद्यपि जून के अंत तक एक करोड़ चंदा पूरा कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है, पर अभी मुझे उसके लक्षण दिखाई

नहीं देते। इसलिए बाकी रहे चंदे के शेयर दस-पंद्रह सज्जनों में विभक्त कर दिये जायेंगे और जिन-जिन प्रांतों में अपेक्षित चंदे से कम चंदा वसूल हुआ है, उन-उन प्रांतों में घूमकर चंदा बढ़ाने की कोशिश की जायेगी। कलकत्ता, आसाम आदि में अगर घूमकर जोर से प्रयत्न किया जाए, तो अच्छा चंदा वसूल होने की संभावना है। तथापि निरी संभावना पर ही हमको निर्भर नहीं रहना चाहिए। हमको हमारी निजी जिम्मेदारी समझकर ही काम करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो एक करोड़ चंदे की घोषणा ३० जून तक कैसे की जा सकेगी ? और यदि उक्त घोषणा नहीं की गई तो हमारी अपकीर्ति होगी। इन सब बातों को विचार कर आप कितनी जिम्मेदारी लेने को तैयार हैं, सो कृपया सूचित कीजिये।"

यह पत्र एक नमूना है, जिससे विदित होता है कि श्री जमनालाल जी ने किस प्रकार अपनी निजी संपत्ति और व्यक्तिगत प्रभाव से कांग्रेस की आर्थिक व्यवस्था को संतुलित बनाये रखा और उसके बड़े-बड़े कार्यक्रमों की सफलता के लिए ठोस आधार प्रदान किया। अन्यथा इस धन-प्रधान युग में महात्मा गांधी जैसे लोकोत्तर व्यक्ति को भी इतनी सफलता मिल सकना संदेहास्पद ही था। इसलिए यदि यह कहा जाए कि जमनालाल जी और महात्मा गांधी का इस प्रकार सहयोग हो जाना भी एक दैवी-विधान ही था, तो इनमें अंधश्रद्धा की कोई बात नहीं।

गांधी जी को सर्वस्व समर्पण—

गांधी जी भी जमनालाल जी के इस महत्त्व को खूब समझते थे और इसलिए वे भी एक सच्चे पिता के समान उनकी नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति के प्रति बड़े जागरूक रहते थे। एक बार उन्होंने जमनालाल जी को लिखा था—

"हम इस निर्णय पर कैसे पहुँच सकते हैं कि तुम मेरे पुत्र होने योग्य हो या नहीं, अथवा मैं तुम्हारा पिता होने योग्य हूँ या नहीं ? जिस प्रकार तुमको अपने विषय में अविश्वास है, उसी प्रकार मुझे भी अपने विषय में अविश्वास है। यदि तुम अपूर्ण हो तो मैं भी अपूर्ण हूँ।

पर मुझे तुम्हारे स्नेह ने विवश कर दिया और तुम्हारे पिता का स्थान मुझे लेना पड़ा। ईश्वर मुझे इस योग्य बनाये। यदि तुम में कुछ बुराईयाँ या त्रुटियाँ रह जायेंगी तो वे इस बात की परिचायक होंगी कि वे मेरी ही बुराईयाँ थीं।

"मुझे विश्वास है कि हम दोनों अपनी त्रुटियों को दूर करने में सफलता प्राप्त करेंगे। ईश्वर की इच्छा है कि हमारे हृदय में समर्पण की भावना जाग्रत् हो। वह हृदय के गुह्य स्थलों को भी देख सकता है। यदि हम असफल रहे तो वह हमारी योग्यता के अनुसार ही हम से व्यवहार करेगा।"

गांधी जी के संपर्क का यह प्रभाव हुआ कि जमनालाल जी दिन पर दिन अंतर्दर्शी और आत्म-आलोचक होते गये। वास्तव में वे धार्मिक विचारों के तो आरंभ से ही थे। वे जन्म से पक्के वैष्णव थे और उनके घर में 'लक्ष्मीनारायण' की पूजा नियमित रूप से होती रहती थी। उनका समस्त परिवार ही व्रत, पूजा, उपासना में लगा रहता था और उनके यहाँ पंडित, पुरोहित सदा धार्मिक कृत्य कराते ही रहते थे। इसलिए बाल्यावस्था से धार्मिक प्रवृत्ति के होते हुए भी केवल 'पूजा-प्रार्थना के धर्म' से उनको आत्म संतोष नहीं होता था। वे अच्छी तरह समझते थे कि थोड़ी देर के लिये भगवान् के मंदिर में जाकर भगवान् के दर्शन, स्तुति, पूजा, आदि कर लेने और फिर दिन भर सांसारिक परिस्थितियों में पड़कर हर तरह के उचित-अनुचित कार्य करते रहने से वास्तविक आध्यात्मिक उन्नति कभी नहीं हो सकती। आध्यात्मिकता का संबंध तो समस्त जीवन से है। इसलिए जब तक हम अपना दैनिक रहन-सहन और व्यवहार अध्यात्म की दृष्टि से न रखें तब तक सच्ची आत्मिक शांति मिलनी संभव नहीं।

इस उद्देश्य को दृष्टिगोचर रखकर वे आरंभ से ही देश के महान् नेताओं से मिलते रहते थे। माननीय मालवीय जी के प्रति उनको बहुत श्रद्धा थी। कुछ समय वे श्री रवींद्र नाथ ठाकुर के साथ भी रहे। लोकमान्य तिलक के वे आरंभ से भक्त थे और 'केसरी' में उनके ओजस्वी लेखों को बड़े चाव से पढ़ा करते थे। सन् १९०६ में जब 'हिंद केसरी' प्रकाशित हुआ तो उन्होंने उसके सहायतार्थ अपने

जेब खर्च से बचाकर १०० रु० चंदा भेजा था। वे कभी-कभी कहा करते थे कि मुझे लाख रुपया दान करने से भी उतनी प्रसन्नता और संतुष्टि नहीं हुई, जितनी उस १७ वर्ष की आयु में केवल सौ रुपया का छोटा-सा दान देने से हुई थी।

पर लोकमान्य तिलक से भी उनकी आध्यात्मिक प्यास तृप्त न हो सकी। वे महान् विद्वान् और चोटी के देशभक्त अवश्य थे और जमनालाल जी उनके वीरतापूर्ण कार्यों के बड़े प्रशंसक थे। पर जिस प्रकार का आध्यात्मिक गुरु वे खोज रहे थे, वह बात तिलक जी में भी उनको न मिली।

सत्याग्रह का प्रभाव—

जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन का वर्णन पढ़ा और मालूम हुआ कि किस प्रकार वे राम नाम का सहारा लेकर बड़े-बड़े शक्तिशाली शासकों का विरोध करने को खड़े हो जाते हैं, तो उनका झुकाव गांधी जी की तरफ होने लगा। उनके मन में आया करता था—"गांधी जी महान् और ईश्वरीय आत्मा हैं। वे भारत वापस कब आयेंगे ? जब कभी वे वापस आयेंगे, मैं उनसे जरूर मिलूँगा और उन्हें अपना बना लूँगा।"

जब सन् १९१५ में गांधी जी भारत वापस आये और श्री गोखले की सम्मति से उन्होंने साबरमती में आश्रम बना लिया तो जमनालाल जी भी वहाँ पहुँचे। उसके बाद थोड़े-थोड़े समय के अंतर से वे वहाँ आते ही रहे। वहाँ रहकर उन्होंने गांधी जी की कार्य पद्धति को बहुत समीप से देखा और अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्होंने अपना आध्यात्मिक गुरु प्राप्त कर लिया। उन्होंने देखा कि गांधी जी जो कुछ कहते हैं, दूसरों को जैसा उपदेश करते हैं, स्वयं भी वैसा ही आचरण करते हैं और यही सच्चे महात्मा का लक्षण हो सकता है।

गांधी जी की तरफ जमना लाल जी का इतना अधिक आकर्षण होने का कारण यही था कि उनमें राजनीति और अध्यात्म का ऐसा सम्मिश्रण हुआ था, जिसकी दूसरी मिसाल मिल सकनी

यदि असंभव नहीं, तो दुरूह अवश्य है। आजकल तो राजनीति और अध्यात्म को इस प्रकार पृथक् समझा जाता है जैसे कि नीला और लाल रंग अथवा तेल और पानी। लोगों की सामान्य रूप से यह धारणा है कि राजनीति में सत्य, अहिंसा आदि का कोई स्थान नहीं। पर गांधी जी ने अपनी राजनीति इन्हीं दोनों तत्त्वों पर आधारित रखकर निश्चित की और उसे पूरी तरह कारगर सिद्ध कर दिखाया। जमनालाल जी का भी राजनीति की तरफ सन् १९०६ से ही झुकाव था, जब देश में बंग-भंग के फलस्वरूप स्वदेशी व्यवहार और अंग्रेजी वस्तुओं के बायकाट का आंदोलन जोरों से छेड़ा गया था। उसी समय से उन्होंने भारतीय कारखानों में बना वस्त्र धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। साथ ही भारतीय नेताओं के उद्‌गारों और प्रेरणात्मक विचारों को पढ़कर वे विदेशी-शासन की बुराइयों से भी परिचित हो गये थे। दो-चार गरीब लोगों पर पुलिस वालों के अत्याचार देखकर उन्होंने यह समझ लिया था कि वास्तव में किसी देश पर अन्य देश का शासन होना न्याय और नीति के विरुद्ध है और इससे जनता का हर तरह से पतन होता है।

पर जमनालाल जी के ये राजनीतिक विचार धर्म से भी संयुक्त थे। वे स्वभाव से ही धार्मिक होने के कारण ऐसी राजनीति को कम पसंद करते थे, जिसे किसी प्रकार धर्म विरुद्ध अथवा धर्म से पृथक् कहा जा सके। पर उस समय तक उनको कोई ऐसा नेता दिखलाई नहीं देता था, जो धार्मिक आधार लेकर राजनीतिक आंदोलन चला रहा हो। यों माननीय मालवीय जी सुप्रसिद्ध धार्मिक व्यक्ति थे और राजनीतिक क्षेत्र के साथ ही सनातन धर्म के भी नेता माने जाते थे। लोकमान्य तिलक भी धर्म के महान् ज्ञाता और आचरण करने वाले माने जाते थे। पर इन लोगों की यह धार्मिकता व्यक्तिगत थी। उन्होंने धर्म और राजनीति को मिलाने की कभी चेष्टा नहीं की और वे भी अन्य सबकी तरह यही मानते थे कि राजनीति में धर्म का प्रश्न उठाना व्यर्थ है।

यह केवल गांधी जी की महानता और व्यवहारिक अध्यात्म का परिणाम था कि भारतीय राजनीति कुछ वर्षों तक न्यूनाधिक मात्रा में

धर्म के मार्ग का अनुसरण करती रही। यह नवीन परिवर्तन जमनालाल जी जैसे गिने-चुने 'धार्मिक-देश-भक्तों' को बहुत रुचिकर और महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ और वे राजनीतिक क्षेत्र में तन-मन-धन से प्रविष्ट हो गये। गांधी जी की इस विशेषता के लिए जमनालाल जी प्रायः कहा करते थे—

"गांधी जी के साथ रहने का जिसे सौभाग्य मिला या व्यक्ति और जीवन की समस्याओं के प्रति गांधी जी के दृष्टिकोण को जिसने समझने का प्रयत्न किया, वह व्यक्ति जीवन में कभी थक नहीं सकता। वह कार्य के लिए उत्साह और जीवन की अभिरुचि से परिपूरित रहेगा। वह सदैव अपने कर्तव्यपालन को तत्पर रहेगा और जो कुछ उसके पास है, उससे संतुष्ट रहेगा। यह संभव है कि गांधी जी द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग में देर हो, पर है यह निश्चित मार्ग। इसमें कोई जोखिम नहीं है। जो कोई इस मार्ग का अनुसरण करेगा, वह औरों के लिए नहीं, तो कम से कम अपने लिये तो स्वराज्य अवश्य प्राप्त कर लेगा, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।"

गांधी जी के इस व्यवहारिक अध्यात्म का अनुभव जमनालाल जी एक-दो वर्ष नहीं, चौबीस वर्ष तक निरंतर करते रहे और इसके फल से उनकी स्थिति भी एक 'निष्काम कर्मयोगी' जैसी बनती चली गई। अपने अंतिम जीवन-काल में उन्होंने अपने इस समस्त अनुभव और उसके अनुसरण करने का निष्कर्ष इन शब्दों में प्रकट किया—

'पिछले चौबीस वर्षों में बराबर गांधी जी के संपर्क में रहा हूँ। मैंने प्रत्येक क्षेत्र में उनके कार्यों को निकट से देखा है। मैंने उनके आश्रम के जीवन में भी भाग लिया है। मैं उनके उपवास के समय भी साथ रहा हूँ। मैंने उनकी बीमारी में सेवा भी की है। उनके बहुत से महत्त्वपूर्ण वार्तालापों और विचार-विमर्शों को मैंने देखा है। उनके जन कार्यों के भार को बँटाने का मैंने पूर्ण प्रयत्न किया है। प्रत्येक स्थिति में उनके बहुत से गुणों से मैं प्रभावित रहा हूँ। उनमें मेरा विश्वास सदैव बढ़ता ही गया है। मैं उनके साथ अपना तादात्म्य अधिक से अधिक करता ही गया हूँ। आज वे मेरे आदर्श हैं—मेरे पथ प्रदर्शक हैं। उनकी आज्ञा शिरोधार्य है, उनका स्नेह मेरा जीवन है।"

राजनीतिक संघर्ष में त्याग और बलिदान—

जमनालाल जी बाल्यावस्था से ही एक बड़े धनी परिवार में पले थे और बड़े होने पर उनको संसार के वे समस्त सुख और सुविधायें प्राप्त हो गई थीं, जो धन से प्राप्त की जा सकती हैं। प्राचीन काल के नीतिकार भी 'स्वर्ण को सब गुणों का आधार' बतला गये थे। आजकल धन-संपदा तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का स्वामी और संचालक और सब कुछ बना है। इसलिए जब जमनालाल जी ने स्वेच्छा से उस धन के मोह और उससे प्राप्त होने वाले भोगों को त्याग दिया और स्वाधीनता-संग्राम में पूर्ण रूप से निमग्न हो गये, तो भी राजगोपालाचार्य जैसे विद्वान् आलोचक ने उनके संबंध में निम्न पंक्तियाँ लिखी थीं—

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

"जमनालाल के समान और किसी ने गृहस्थी का सुख, धन, पद और प्रभाव नहीं भोगा होगा। मनुष्य को जिस चीज का अन्य बातों से अधिक लालच होता है, वह है बड़े और शक्तिशाली लोगों की मित्रता। यह भी जमनालाल के समान थोड़े ही लोगों ने प्राप्त की होगी। संक्षेप में गांधी जी के आंदोलन में मिलने वाले दुःख और अभाव को छोड़कर और सब कुछ जमनालाल जी ने भोगा था। फिर भी एक क्षण में उन्होंने अपना सारा-जीवन बदल दिया। जो सुख और आराम वे अपने धन से खरीद सकते थे, उस पर लात मार दी। जो शक्ति और प्रभाव उनके पैरों में पड़ा था, उसे एक दम त्याग दिया। वे संघर्ष के बीच एक साधारण कार्यकर्ता के समान कूद पड़े। कौन कहता है कि हमारे राष्ट्र का स्तर ऊँचा नहीं उठा है ?"

वास्तव में जमनालाल जी आरंभ से ही धन की उचित मर्यादा को समझते थे और वे उसे धर्म और मानवता से ऊँचा स्थान नहीं देना चाहते थे। इसलिए वे वर्षों तक प्रयत्न करके ऐसा 'धर्मगुरु' ढूँढ़ते रहे, जो केवल भजनानंदी अथवा 'अहं ब्रह्मास्मि' का उच्चारण मात्र करने वाला न हो, वरन् जिसने संसार में रहते हुये अध्यात्म के आदर्श का पालन करके दिखाया हो। उनका यह उद्देश्य गांधी जी के

निकट पहुँचने पर पूरा हो गया और उसी समय से उन्होंने अपना सर्वस्व उनके कार्य के लिए अर्पित कर दिया।

इसके बाद भी, यद्यपि वे व्यापार करते रहे और बहुत-सा रुपया भी कमाते रहे, पर उन्होंने अपने को उस धन का व्यवस्थापक मात्र समझा। कहा जाता है कि उनको अपने बाबा बच्छराज जी से ५-६ लाख की संपत्ति उत्तराधिकार में मिली थी। उन्होंने व्यापार द्वारा उससे आमदनी करते हुए लगभग २५ लाख रुपया सार्वजनिक हित के कामों में दान कर दिया। इसके अलावा भी कई लाख रुपया गुप्त रूप से अंग्रेज सरकार से संघर्ष करने वाले देश-भक्तों और उनके परिवार के निर्वाह में लगा दिया, जिसका किसी को पता ही नहीं चला। इस प्रकार एक पूँजीपति का क्रांतिकारी देशभक्त बनकर अपना सर्वस्व राष्ट्रोद्धार के लिए अर्पित कर देना एक असाधारण उदाहरण है। पूँजीपतियों में इस तरह की मनोवृत्ति का होना अपवाद स्वरूप ही माना जायेगा और इसलिए चाहे हम संसार भर के इतिहास को छान डालें, जमनालाल जैसे उदाहरण उंगलियों पर गिनने लायक भी कठिनता से मिलेंगे। सभी देशों के स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने वाले प्रमुख कार्यकर्ता प्रायः गरीब अथवा मध्यम वर्ग में से ही निकले हैं। जमनालाल जी का पूँजीपति वर्ग से निकल इस क्षेत्र में प्रवेश करना अपने ढंग का निराला ही नमूना है।

निकृष्ट मनोवृत्ति के कुछ लोगों ने अपने दोष ढूँढ़ने वाले स्वभाव के अनुसार जमनालाल जी पर कांग्रेस का रुपया अपने काम में लगाने और उससे तरह-तरह के लाभ उठाने के झूठे आरोप लगाये। नागपुर के 'सावधान' नामक मराठी पत्र ने एक बार लिखा—"देशभक्ति और उदारता की आड़ में जमनालाल जी अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। मगनवाड़ी की उचित रूप से रजिस्ट्री भी नहीं कराई गई, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसे अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ को सौंप दिया गया है। जब यह संघ काम करना बंद कर देगा तो नये भवनों सहित सारा मगनवाड़ी 'बच्छराज एंड कंपनी' के पास पहुँच जायेगा, जो सेठ जमनालाल बजाज, उनकी पत्नी और लड़के को लेकर बनाया गया है।" यह पत्र एक

साल तक इसी प्रकार के अपमानजनक लेख लिखता रहा, पर जमनालाल जी ने उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। जब गांधी जी ने स्वयं उनको सलाह दी कि "इस पत्र के संपादक पर मुकद्मा चलाया जाए। क्योंकि उसने केवल जमनालाल जी को ही व्यक्तिगत रूप से बदनाम नहीं किया, वरन् उससे राष्ट्रीय संस्थाओं की भी काफी हानि होती है।"

इस पर जमनालाल जी ने 'सावधान' के संपादक आर० वी० मावकर पर मानहानि का मुकदमा वर्धा के मजिस्ट्रेट की अदालत में दायर कर दिया। उसमें सिद्ध हो गया कि मावकर ने द्वेष बुद्धि और नीच स्वार्थ साधन की दृष्टि से जमनालाल जी को बदनाम किया है। उसे ६ महीने की कैद और एक हजार रु० जुर्माना की सजा दी गई।

बंबई के एक अन्य मराठी पत्र 'चित्रा' ने भी 'जमनालाल जी द्वारा विजित यूरोप' शीर्षक लेख में ऐसे ही बेहूदा आक्षेप किये। उसने लिखा कि "जमनालाल जी ने ४० हजार के मूल्य के 'सेगाँव' को चार हजार रुपया में हड़प लिया है। जब से वे कांग्रेस के कोषाध्यक्ष हुये हैं, तब से उनके कब्जे में काफी रुपया आ गया है, जिसे वे ब्याज पर देकर मुनाफा अपनी जेब में डालते रहें।" इस लेख पर भी मुकदमा चलाया गया। पत्र के संपादक तथा प्रिंटर ने माफी माँग ली और लेखक को ६ मास की कैद और ५०० रु० जुर्माना की सजा दी गई।

उन दिनों पं० जवाहरलाल जी नेहरू अखिल भारतीय कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी थे। जब उन्होंने कुछ दुष्टों को इस प्रकार की हरकतें करते देखा तो उन्हें बड़ा बुरा लगा और उन्होंने अखबारों में एक बयान प्रकाशित कराया कि "कांग्रेस का सब हिसाब-किताब बा-कायदा रखा जाता है और उसे 'ऑडिट' कराया जाता है। हिसाब के चिट्ठे समय-समय पर अखबारों में भी प्रकाशित कराये जाते हैं। इसका सारा श्रेय संस्था के कोषाध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज को ही है। कांग्रेस की नीति यह नहीं है कि समुचित कारण मिलने पर भी मुकदमेबाजी या झगड़े का सहारा लिया जाए, पर यदि दुष्टतापूर्ण

और मानहानिकारक बयान जारी रखे गये तो कांग्रेस अपनी प्रतिष्ठा की रक्षार्थ अदालत का दरवाजा खटखटाने से भी नहीं चूकेगी।"

गांधी जी ने भी कहा—"जमनालाल स्वयं को अपनी संपत्ति का एक न्यासी (ट्रस्टी) ही समझते हैं। अगर वे अपनी संपत्ति को पूर्ण रूप से न त्याग सके तो इसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। मैंने ही उनको सब कुछ त्यागने से रोका था। मैं इस विषय में सदैव सतर्क रहा हूँ कि वे किसी क्षणिक भावावेश में आकर ऐसा काम न कर बैठें कि बाद में उन्हें अपने कार्य पर पश्चात्ताप करना पड़े। लेकिन मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जमनालाल जी ने जितना भी कमाया है, वह जनता के कल्याण में लगाया है।"

इस प्रकार जमनालाल जी ने धनी व्यापारी वर्ग के सामने जो आदर्श उपस्थित किया, उससे देश के समस्त नेता बड़े प्रभावित हुये। आखिर आंदोलन के संचालन के लिए धन तो आवश्यक था ही। इसलिए जब तक ऐसे देशभक्त और धनी व्यापारी आगे न बढ़ते और तन-मन-धन से राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेने को तैयार न होते, तब तक संतोषजनक परिणाम प्राप्त हो सकना संभव न था। केवल गांधी जी, जवाहरलाल जी, विनोबा जी जैसे सत्याग्रह पक्ष वाले नेता ही जमनालाल जी के प्रशंसक नहीं थे, वरन् अन्य छोटे-बड़े नेताओं की दृष्टि के संपर्क में आने से भी पहले जमनालाल जी लोकमान्य तिलक से मिले थे। उस दो-एक दिन की जान-पहचान के आधार पर ही श्री तिलक ने उनकी विशेषता को समझ लिया था। इसके कुछ समय पश्चात् ऋषभदास रांका नाम के युवक तिलक जी के पास गये और कहा कि "मैं अधिक पढ़ा-लिखा नहीं हूँ और व्यापार ही मेरा मुख्य कार्य है, पर अब मैं देश-सेवा के लिये आपके साथ रहना चाहता हूँ।" तिलक जी ने उन्हें सम्मति दी कि "व्यापार का कार्य करते हुये भी तुम देश-सेवा कर सकते हो। इस कार्य के लिए तुम वर्धा के सेठ जमनालाल बजाज के साथ कार्य करो। वे एक बड़े व्यापारी और महान् देशभक्त हैं। कुछ दिन पहले वे पूना आये थे और उनका बड़ा सम्मान हुआ था। उनको अपना आदर्श मानो, तुम्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिलेगी।

लोकमान्य तिलक के सुप्रसिद्ध पत्र 'केसरी' में भी जमनालाल के 'नागपुर झंडा-सत्याग्रह' से संबंधित कार्य की बड़ी सराहना की गई थी। उसके एक लेख में कहा गया था—"इसमें कोई संदेह नहीं कि नागपुर-झंडा सत्याग्रह के मुख्य नेता सेठ जमनालाल जी ने अपने वीरोचित व्यवहार से सारे भारत के व्यापारी वर्ग के सामने एक अनुपम उदाहरण रखा है। वे गर्व से अपने को महात्मा गांधी का पाँचवां पुत्र कहते हैं और निस्संदेह उन्होंने उचित ढंग से अपने 'पिता' का अनुसरण किया है।"

नागपुर-झंडा सत्याग्रह—

नागपुर का झंडा-सत्याग्रह वास्तव में एक ऐसी घटना थी, जिसने जमनालाल को राजनैतिक संघर्ष में खींच लिया और साथ ही देश भर में एक सत्याग्रही नेता के रूप में उनका नाम भी प्रसिद्ध हो गया। सन् १९२० में नागपुर की पुलिस ने कांग्रेस के एक जलूस को रोका और उससे तिरंगे राष्ट्रीय झंडे को छीन लिया। इस बात को वहाँ के नेताओं ने राष्ट्रीय ध्वज का अपमान समझा और पुलिस की कार्यवाही का विरोध करने के लिए एक बड़ा जलूस झंडे के साथ निकालने का निश्चय किया। यह खबर पाकर सरकार ने इस प्रकार के सभी जलूसों पर रोक लगा दी।

उसी समय जमनालाल जी कलकत्ता से लौटते हुए नागपुर के स्टेशन पर होकर गुजरे। नागपुर के कितने ही राजनीतिक कार्यकर्ता उनसे स्टेशन पर मिले और झंडा सत्याग्रह का नेतृत्व करने की प्रार्थना की। उन्होंने उनके निश्चय की सराहना की और कहा कि वे इस विषय पर विचार करके दो-चार दिन में उत्तर देंगे।

वर्धा पहुँचकर जब उन्होंने इस विषय में अच्छी तरह विचार किया तो उनको यही अनुभव हुआ कि राष्ट्रीय झंडे की सम्मान-रक्षा के लिए जो आंदोलन किया जाए, उनमें भाग लेना उनका कर्तव्य है। वे अच्छी तरह जानते थे कि यह एक बड़ा उत्तरदायित्व है, जिसमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ और खतरे आयेंगे। उन सबके लिये तैयार होकर उन्होंने झंडा-सत्याग्रह का नेतृत्व करने की स्वीकृति दे दी।

नागपुर का झंडा-सत्याग्रह देश में बड़ी जाग्रति करने वाला सिद्ध हुआ। उस समय चौरीचौरा हत्याकांड के कारण गांधी जी ने अपना देशव्यापी आंदोलन स्थगित कर दिया था और राजनीतिक क्षेत्र में एक प्रकार का अवसाद उत्पन्न हो गया था। ऐसे अवसर पर जमनालाल जी के नेतृत्व में सत्याग्रही स्वयं-सेवक छोटी-बड़ी टोलियों में प्रतिदिन झंडा लेकर जलूस निकालने लगे। जैसे ही यह जलूस सिविल लाइन्स में घुसने की चेष्टा करता, पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाता। आरंभ में तो इन स्वयं-सेवकों को मारपीट कर कुछ दूर ले जाकर छोड़ दिया जाता था, उसके बाद वे जेल भेजे जाने लगे।

कुछ ही दिनों में झंडा-सत्याग्रह का नाम देश भर में फैल गया और अन्य प्रांतों से भी स्वयं सेवक उसमें भाग लेने को आने लगे। यह देखकर पुलिस उन स्वयंसेवकों को स्टेशन पर उतरने से पहले ही गाड़ी में ढूँढ़कर पकड़ने में लग गई। पर फिर भी नागपुर के सत्याग्रह-कैंप में दो-ढाई सौ स्वयं सेवक इकट्ठे हो गये। जब सत्याग्रह की धीमी गति से स्वयं सेवकगण ऊबने लगे और जल्द ही जलूस में भेजने का आग्रह करने लगे तो एक दिन बड़ा जन-सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया। पर सरकार को इसका पता लग गया और उसने अकस्मात् 'सत्याग्रह शिविर' पर छापा मारकर कुल २५० व्यक्तियों को एक साथ गिरफ्तार कर लिया। इनमें जमनालाल जी, विनोबा जी और महात्मा भगवानदीन जी आदि नेता भी थे। मुकदमा चलने पर सब लोगों को एक-एक महीने की सजा दी गई, पर जमनालाल जी को १८ महीने की जेल और ३ हजार रु० जुर्माना की सजा दी गई, क्योंकि वे इस आंदोलन के संगठनकर्ता माने गये।

जब उन्होंने जुर्माना देने से इनकार किया तो पुलिस ने उनके घर जाकर एक कैश बॉक्स में रखे ४०० रु० जब्त कर लिये और उनकी मोटरकार तथा घोड़ा गाड़ी को भी ले गये। मोटर और गाड़ी को दो बार नीलाम किया गया, पर एक भी व्यक्ति बोली लगाने नहीं आया। बहुत समय बाद मोटर को राजकोट भेज दिया गया, पर वहाँ

भी कोई व्यक्ति उसे खरीदने को तैयार नहीं हुआ। तब एक अंग्रेज ने ही नाम मात्र के मूल्य पर उनको खरीद लिया।

इस प्रकार जमनालाल जी के राजनीतिक संघर्ष का आरंभ-नागपुर-झंडा-सत्याग्रह देश में इतना प्रसिद्ध हो गया कि अनेक अखिल भारतीय नेता वहाँ पहुँचकर उसमें सहयोग देने लग गये। जमनालाल जी के गिरफ्तार होते ही उनका स्थान सरदार पटेल ने ग्रहण कर लिया और वे दो महीना तक उसका संचालन करते रहे। जब लगभग दो हजार स्वयं-सेवक सरकारी जेलों में भर गये और उनकी व्यवस्था करना सरकार के लिये एक समस्या बन गई, तो अंत में उसे दबकर यह निर्णय करना पड़ा कि इस जन-आंदोलन को समाप्त न किया जाए। इसलिए उसने बिना किसी प्रकार की घोषणा किये, १८ अगस्त से स्वयंसेवकों के जलूस को रोकना बंद कर दिया। दूसरे शब्दों में उसने सत्याग्रहियों के इस अधिकार को स्वीकार कर लिया कि कहीं भी तिरंगा झंडा लेकर निकल सकते हैं।

इस प्रकार यह आंदोलन लगभग साढ़े तीन महीने तक चला और इसने देश में एक नवीन उत्साह उत्पन्न कर दिया। पंद्रह दिन बाद जेलों में बंद सब सत्याग्रही कैदियों को छोड़ दिया गया, जिनमें जमनालाल जी भी थे। देश के समस्त नेताओं ने उनकी प्रशंसा की कि उन्होंने एक स्थानीय आंदोलन को इतने साहस और योग्यता से चलाया कि समस्त राष्ट्रीय आंदोलन को उससे बड़ा बल मिला और राष्ट्रीय ध्वज का महत्त्व जनता के हृदय में अंकित हो गया। इस अवसर पर सरदार पटेल ने कहा—"जब चारों ओर अंधेरा था, तब जमनालाल ने ही अपने त्याग और कष्ट-सहन से प्रकाश की ज्योति जलाई।" पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने कहा—"जब तक मैं नागपुर नहीं आया तब तक झंडा-सत्याग्रह के महत्त्व को अच्छी तरह न समझ सका। इसका मुझे दुःख है। मैं यह अनुभव करता था कि जब तक सरकारी रोक लगी है, तब तक हमको यह सत्याग्रह नहीं करना चाहिये। पर जब मैंने यहाँ आकर देखा कि कितना महान् कार्य हो चुका है, तो मुझे संतोष हुआ ?"

बात यह थी कि आरंभ में झंडा-सत्याग्रह कुछ उत्साही स्वयंसेवकों द्वारा आरंभ कर दिया गया था। न उनके पास कोई तैयारी थी और न सुसंबद्ध योजना। इसीलिये नेहरू जी ने इसे समय से पहले उठाया गया कदम समझा और उसे आगे न बढ़ाने की सम्मति प्रकट की। पर जमनालाल जी ने उसका उत्तरदायित्व ग्रहण करके और उसके संगठन को हर प्रकार से मजबूत करके उसे इतना जोरदार बना दिया कि सरकार अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी उसे न कुचल सकी और अंत में उसे सत्याग्रहियों की विजय स्वीकार करनी पड़ी। इस कार्य में जमनालाल जी ने केवल धन और परिश्रम से ही पूरा सहयोग नहीं दिया, पर जेल जाने के लिये भी सबसे पहले तैयार थे। इस घटना का उल्लेख करते हुये सत्याग्रह-कमेटी के अध्यक्ष महात्मा भगवानदीन जी ने अपने संस्मरणों में लिखा है—

"सत्याग्रह को शुरू हुए थोड़े ही दिन हुये थे कि जमनालाल जी ने स्वयंसेवकों के जत्थे में जाने के लिए अपना नाम पेश किया। उस समय वे ही सत्याग्रह कमेटी के कोषाध्यक्ष पद पर थे। इसलिए मैंने उनसे कहा—'क्या आंदोलन के लिए रुपये की कमी हो गई है, जो आप काम छोड़कर जेल में बैठ जाना चाहते हैं ?' जमनालाल जी ने उत्तर दिया—'नहीं रुपये की तो कोई कमी नहीं। इतना रुपया आ रहा है, सँभलता भी नहीं। पर लोग कहते हैं कि झंडा-सत्याग्रह में किराये के स्वयं सेवक भरती करके जेल भेजे जा रहे हैं और सब नेता अपनी जान बचाये बैठे हैं।' तब मैंने उन्हें समझाया कि ऐसे लोगों की बातों पर ध्यान दोगे तो अपना काम ही बिगडेगा। ऐसे राह चलते लोगों की सम्मति को महत्त्व देने का क्या नतीजा होता है ? यह तो 'दो-बाप बेटा और गधे' की कहानी से स्पष्ट जाना जा सकता है।"

वास्तव में जमनालाल जी पूरी सच्चाई की भावना से आंदोलन में कूदे थे और इसलिए उसके विपरीत कोई बात सुनना उनको नापसंद था। जब विरोधी लोगों ने सत्याग्रह को नकली बतलाया तो

उनको यह बहुत खराब लगा और सबसे पहले वे स्वयं जाकर आंदोलन की सच्चाई का प्रमाण देने को तैयार हो गये।

समस्त परिवार को देश सेवक बनाया—

इस प्रकार जमनालाल जी को देश-सेवा की जितनी गहरी लगन लग गई थी, इसका कुछ आभास उपर्युक्त घटनाओं से मिल जाता है। वैसे तो कई वर्ष पहले से ही उनकी भावना इसी तरफ झुकती चली जा रही थी। सन् १९१७ में जब उनकी आयु केवल २८ वर्ष की थी और सरकार ने उनको रायबहादुर की उपाधि दे डाली थी, उन्होंने अपने पत्नी को एक पत्र में लिखा था—"मेरे पास बहुत-से बधाई के तार और पत्र आ रहे हैं, क्योंकि मैं 'रायबहादुर' बन गया हूँ। यह सब थोथा दिखावा है, पर यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो इससे भी जनता की सेवा की जा सकती है। सद्बुद्धि और स्वार्थ रहित सेवा करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए ईश्वर से सदैव प्रार्थना करनी चाहिए। यह जीवन स्वप्न के समान है। इसमें कोई वास्तविक सुख नहीं, जो सुख जान पड़ता है, काल्पनिक है। इन विचारों पर चिंतन करने से मन को बड़ी शांति मिलती है। अतएव समस्त जीवन भर हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम जो कुछ सेवा करें, यह स्वार्थरहित होकर करें। मुझे आशा है कि तुम भी अपने जीवन में इस आदर्श को सामने रखोगी। मुझे पूरा विश्वास है कि इस आदर्श की उपलब्धि के लिए निरंतर कर्म करते हुये तुम्हें पूर्ण शांति मिलेगी।"

पतिव्रता पत्नी जानकी देवी ने बिना किसी निषेध या संदेह के इस सलाह को गाँठ में बाँध लिया और वे जीवित रहते तक इस पर अमल करती रही हैं। वे सत्याग्रह आंदोलन में जमनालाल जी की सच्ची सहचरी की भाँति उनके जेल जाने पर स्वयं भी जेल गईं। विनोबा जी की भूदान-यात्रा में उनके साथ पैदल चलीं और फिर राजस्थान में कूपदान-आंदोलन आरंभ करके पानी के लिए तरसने वाले लोगों के लिए सैकड़ों कुँये बनवा दिये। इतना ही नहीं, अपने पति की आज्ञा मानकर उन्होंने अपने बच्चों को भी देश-सेवा की

प्रेरणा दी थी। जमनालाल जी ने सन् १९२२ में ही अपनी यह भावना अपनी पत्नी पर प्रकट कर दी थी—

"वर्षों से मेरी यह इच्छा है कि तुम और हमारे बच्चे, मेरे कारण से सम्मान और पद प्राप्त न करें, अपितु वे सब अपने कार्यों और सेवाओं के फलस्वरूप प्राप्त करें। इसी में तुम्हारी, मेरी और सबकी भलाई है। मुझे ऐसा लगता है कि ईश्वर की कृपा और बापू के आशीर्वाद से मेरी इच्छा शीघ्र ही पूरी हो जायेगी। मुझे यह विश्वास हो चला है कि हम सब कम या ज्यादा, दूसरों की सेवा में अवश्य लग जायेंगे। सच्चे सुख का यही एक मार्ग है।"

जब गांधी जी के आदेशानुसार जानकी देवी आंदोलन में भाग लेकर जेल चली गईं तो यह समाचार पाकर जमनालाल जी बड़े प्रसन्न हुये। वे स्वयं भी उस समय नासिक जेल में बंद थे। वहीं से उन्होंने पत्नी को पत्र भेजा, जिसमें अपनी यह भावना बहुत जोर के साथ प्रकट की थी—

"मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया है और तुम किसी भी घटना का सामना करने को तैयार हो। अब यह जान सकोगी कि जेल का जीवन क्या है ? अब तुम्हें शांति मिलेगी। यह सब इसलिए संभव हो सका है कि हमारे ऊपर ईश्वर की अनुकंपा और बापू का आशीर्वाद है। इसी से हमारे अंदर त्याग और सेवा की भावनाएँ भी आ सकी हैं और हमें अपनी कमजोरियों से बचने का अवसर मिल सका। तुम्हारी वीरता और चित्त की स्थिरता की प्रशंसा करता हूँ।"

इतना ही नहीं, उस समय देश के वातावरण को देखते हुये जमनालाल जी के हृदय में भी बलिदान की भावना उमड़ रही थी। उसे न दबा सके, तो पत्नी को भेजे गये पत्र में उसका भी जिक्र कर ही दिया—

"मेरी यह कामना है कि हम सब या कम से कम हम में से एक का, जो सबसे अधिक प्रिय हो, इस धर्म-युद्ध में बलिदान होने का अवसर अवश्य आये। इससे हम बहुत प्रसन्न होंगे। प्रत्येक को

एक न एक दिन तो मरना ही है, तो फिर इससे अच्छा अवसर और कब मिलेगा कि अपने परिवार, जाति और देश का गौरव बढ़ाने के लिए मरा जाए ? अब गिरफ्तार होने में मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं रहा। जो मैं चाहता हूँ, वह है इसी तरह की मौत। ऐसा लगता है कि अभी हमें बहुत से अभिनय करने हैं और बहुत से दृश्यों में अवतीर्ण होना है। भविष्य बहुत उज्ज्वल और स्पष्ट है।"

अनेक लोग पुराने सामाजिक आदर्शों के अनुसार पतिव्रता और हर प्रकार से आज्ञाकारिणी नारी को इस प्रकार बातें लिखने में कुछ अस्वाभाविकता का अनुभव करते होंगे। वे कहेंगे कि भारतीय ममतामयी और कोमल हृदय पत्नी अथवा माता से बलिदान के अंतिम कदम की चर्चा करना, एक प्रकार की कठोरता है। पर जमनालाल जी अपनी पत्नी या अन्य परिवार वालों से इस प्रकार की जो बातें कहते थे, वह सबकी हित कामना और उच्च कर्तव्यपालन की भावना से होती थीं। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि यह सब बाह्य वैभव निस्सार है। इससे आत्मकल्याण के बजाय मनुष्य का आंतरिक पतन ही अधिक होता है। विशेष कर भारतवर्ष के धनवान जिस प्रकार रुपया को अनुचित महत्त्व देने लगे थे और उसके आगे नीति, चरित्र, कर्तव्य, तक की भी जिस प्रकार अवहेलना करने लगे थे, वह उनके हृदय को व्यथित करने लगा था।

अभी तक उनकी गिनती भी उन्हीं 'सेठों' में की जाती थी और उनके सब निकट संबंधी इसी मनोवृत्ति के थे। पर किसी आंतरिक अथवा दैवी प्रेरणा से जमनालाल जी ने उस मनोवृत्ति के दोषों को समझ लिया और जान गये कि मानव-जीवन की सार्थकता का यह मार्ग नहीं है। इसीलिए वे जानबूझ कर गांधी जी के संपर्क में आये और हठपूर्वक उनको 'पिता' बनाकर अपना सर्वस्व उनके युग-परिवर्तनकारी कार्य की सफलता के लिए उत्सर्ग कर दिया।

उनका यह परिवर्तन एक महान् घटना की तरह था और वे चाहते थे कि इसका लाभ उनके परिवार वाले भी प्राप्त करें। वे भी तुच्छ धन और जड़ पदार्थों के माया-मोह से विरक्त होकर उच्च-जीवन की ओर अग्रसर हों। इसीलिए उन्होंने केवल अपनी

पत्नी को ही नहीं, वरन् पुत्र, पुत्री, भतीजे और अन्य संबंधियों को भी इसी प्रकार की प्रेरणा देना आरंभ किया और उसका शुभ परिणाम यह हुआ कि उनका कुटुंब सच्चे अर्थों में 'देशभक्तों का परिवार' बन गया।

जमनालाल जी की पत्नी जानकीदेवी ने तो अपना कर्तव्य इतने प्रशंसनीय ढंग से पूरा किया कि जमनालाल जी के पश्चात् भी वे भारत के राष्ट्रीय आंदोलन और प्रगति की एक मुख्य अंग बन गईं। हमारे धर्म-ग्रंथों में जो यह कहा गया है कि पत्नी को अपने पति की छाया बनकर रहना और अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व में घुला देना चाहिए, जानकीदेवी ने उसी आदर्श का अनुसरण किया। उनके सामने राष्ट्रमाता कस्तूरबा गांधी का भी प्रत्यक्ष उदाहरण था, जो पुराने विचारों की वृद्ध नारी होने पर भी महात्मा गांधी के समस्त क्रांतिकारी कार्यों में सहयोग दे रही थीं और उनके मार्ग में वैसी कोई बाधा पैदा नहीं कर रही थीं, जैसा कि भारतीय घरों में प्रायः देखने में आता है। यहाँ हजारों होनहार सच्चे समाज-सेवक केवल पत्नी और परिवार वालों के विरोध अथवा असहयोग के कारण ही अपने जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करने से वंचित रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों के सामने जमनालाल और जानकीदेवी ने एक आदर्श रखा कि किस प्रकार पति और पत्नी की अंतरंग सहमति से परिवार, जाति और समाज के लिए कल्याणकारी परिणाम उपलब्ध हो सकते हैं। देश के छोटे-बड़े धनवानों के लिए तो इन दोनों पति-पत्नियों का उदाहरण एक बहुत बड़ी चीज है। अगर वे इसकी तह में उतरकर विचार करें, तो सहज ही उस मार्ग को प्राप्त कर सकते हैं, जिससे उनका मानव-जन्म सफल हो सकता है। तब वे हजारों 'गुमनाम धनियों' में से एक होने के बजाय (जिनको सामान्य व्यक्ति प्रायः कोसा ही करते हैं) वास्तविक रूप में जनता के श्रद्धाभाजन बनकर एक स्मरणीय स्थान के अधिकारी बन सकते हैं।

संतान पर सुप्रभाव—

जमनालाल जी के दांपत्य-जीवन के विषय में यद्यपि कोई बाहरी व्यक्ति अधिक नहीं जान सकता, पर उससे उत्पन्न होने वाले फलों को देखकर हम उसको आदर्श ही कह सकते हैं। उनकी पत्नी जानकी देवी ने पति का निधन होने के पश्चात् 'अर्द्धांगिनी' का नाम चरितार्थ करने के लिए अपना जीवन सार्वजनिक सेवा के लिए अर्पित कर ही दिया। जमनालाल जी का आकस्मिक स्वर्गवास हो जाने पर जब वह पागल-सी हो गई थी और उनकी देह के साथ सती हो जाना चाहती थी, तो गांधी जी ने स्वयं उनसे कहा—"यह न समझो कि इस प्रकार सती हो जाने से लोग तुम्हारी पूजा करेंगे। इससे तो उल्टी निंदा होगी। हाँ, यदि कर सको तो योगाग्नि पैदा करो और उसमें भस्म होकर सती हो जाओ। लेकिन वह तो संभव नहीं। अब तो तुम्हें पति के पीछे उनकी जोगिन बनकर ही सती बनना है। तुम्हें जमनालाल के छोड़े हुये कार्य को पूरा करने के लिए अपना सर्वस्व लगा देना है।" यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जानकी देवी ने गांधी जी का आदेश शिरोधार्य किया और अपनी समस्त सम्पति जमनालाल जी के प्रिय कार्य गो सेवा के लिए अर्पित कर दी।

जमनालाल जी के बड़े पुत्र कमलनयन भी अपने पिता के पद चिह्नों पर चलते रहे हैं। इस अवसर पर गांधी जी ने उनसे कहा था—"हिंदू धर्म में सबसे बड़ा पुत्र दूसरे पुत्रों की तरह अपने पिता की संपत्ति का वारिस तो होता ही है, मगर साथ ही साथ वह कुल-धर्म का, अपने पिता की नीति और सिद्धांतों का भी संरक्षक बनता है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम व्यापार में लगे हो तो लगे रहो, धन कमाना है तो कमाओ, लेकिन जमनालाल जी की तरह तुमको भी लोकहित के लिए अपनी संपत्ति का संरक्षक बनकर रहना है। तुम अपनी कमाई का रुपया अपने लिए नहीं, लोकसेवा के लिए खर्च करोगे, तभी तुम्हारा ट्रस्टीपन सार्थक हो सकेगा।"

आजकल की स्कूली शिक्षा के दोषों को समझकर, जमनालाल जी ने अपने पुत्र को किसी सरकारी स्कूल में नहीं भेजा। दूसरा कारण यह भी था कि जब कमलनयन स्कूल जाने योग्य हुये, उस समय कांग्रेस ने सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों का बायकाट कर दिया था। जमनालाल जी उन 'नेताओं' में से न थे, जो दूसरों को त्याग और अनुशासन का उपदेश देकर स्वयं उसके विपरीत आचरण करते रहते हैं। इसलिए कमलनयन की आरंभिक शिक्षा महात्मा गांधी के साबरमती आश्रम में और फिर विनोबा जी की देख-रेख में हुई। विनोबा जी ने उनको केवल पढ़ने-लिखने और धर्म संबंधी सिद्धांतों की शिक्षा नहीं दी, वरन् एक सच्चे सत्याग्रही की तरह कातना पीसना, खेती का कार्य, बगीचे की रखवाली और टट्टी साफ करना तक सिखाया। महादेव देसाई से उन्होंने अंग्रेजी का भी कुछ अभ्यास किया। अंत में गांधी जी के कहने से लंका और इंगलैंड की शिक्षा संस्थाओं में रहकर भी अध्ययन किया था।

कमलनयन ने १६ वर्ष की आयु से ही सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया था। उनको सुप्रसिद्ध 'डांडी नमक-सत्याग्रह' के लिए चुने गये सत्याग्रहियों में रखा गया था। पुष्कर (राजस्थान) अंग्रेजी शराब की दुकान के सामने धरना देते समय पुलिस ने उन्हें इतना पीटा कि वे बेहोश हो गये। इसके बाद इसी कार्य के लिए उनको अल्मोड़ा में गिरफ्तार करके जेल का दंड दिया गया। अपना नाम और पता न बताने के कारण उनको 'सी' क्लास के कैदियों में रखा गया। सन् १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में वे जानबूझ कर गिरफ्तारी से बचे रहे और गुप्त रूप से अंग्रेजी शासन को उखाड़ने का कार्य जोरों से करते रहे। उस समय उनकी पत्नी भी गिरफ्तार की ली गई। जब कस्तूरबा को भी गिरफ्तार कर लिया गया, तो उन्होंने उनके स्थान पर खड़े होकर भाषण दिया और फिर गायब हो गये।

जमनालाल जी का दूसरा पुत्र रामकृष्ण जन्म से ४-५ वर्ष की आयु तक तो साबरमती आश्रम में ही रहा। फिर वर्धा आकर वह प्राइवेट रूप से शिक्षा प्राप्त करता रहा। सन् १९३७ में जब देश में कांग्रेस मंत्रिमंडल बन गये और राष्ट्रीय विद्यालय खुल गये तो उसे

वर्धा के नवभारत विद्यालय में दाखिल कराया गया और घर के बजाय उसे छात्रावास में ही रखा गया, जिससे वह कठिनाइयों का अनुभव कर सके, अन्य लड़कों के साथ समानता का भाव रखने लगे और स्वावलंबी बन सके।

सन् १९४१ में व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ होने पर रामकृष्ण ने उसमें भाग लेने का निश्चय किया। पर उसकी उम्र १८ वर्ष से कुछ महीने कम थी, इसलिए गांधी जी ने उसे नाबालिग मानकर शामिल करने से इनकार कर दिया। रामकृष्ण अपनी बात पर डटा रहा, जिससे गांधी जी को उसे आज्ञा देनी पड़ी। उसने चार बार सत्याग्रह किया, जिसमें दस महीने की सजा दी गयी। सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में भी उनको गिरफ्तार करके खूब पीटा गया, फिर पाँच साल की सजा दी गई।

इस प्रकार जमनालाल जी के प्रभाव से उनका पूरा परिवार ही देशसेवा में संलग्न हो गया। उनके भतीजे राधाकृष्ण ने सन् १९४२ आंदोलन में इतना अधिक भाग लिया कि उसे फाँसी का दंड होने की संभावना हो गई थी। जमनालाल जी की लड़कियों और जामाताओं ने भी गांधी जी के कार्यों में पूरा भाग लिया था। मझली लड़की के पति श्रीमन्नारायन कांग्रेस के एक सुदृढ़ नेता रहे हैं और कई वर्षों तक कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी रह चुके हैं।

जमनालाल जी ने अपना उदाहरण उपस्थित करके दिखा दिया कि धनवान् लोगों को देश तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किस प्रकार करना चाहिए ? यद्यपि आजकल भी देश में सैकड़ों धनवान् मौजूद हैं, जो सार्वजनिक कार्यों अथवा धार्मिक अनुष्ठानों में लाखों रुपया दान कर चुके हैं, पर उनकी गिनती देश के लिए त्याग करने वालों में नहीं की जाती। कारण यही है कि वे लोग वर्ष में पचास लाख या एक करोड़ रुपया आमदनी करके उसमें से 'धर्म' के लिए भी दो-चार लाख रुपया खर्च कर देते हैं। पर जमनालाल जी ने केवल अपना अधिकांश धन ही नहीं, स्वयं को भी राष्ट्रीय आंदोलन में समर्पित कर दिया और एक दृष्टि से स्वाधीनता यज्ञ में अपनी आहुति दे दी। उनके इस 'आत्मसमर्पण' के रहस्य

और महत्त्व को जो लोग समझते हैं, वे उनको केवल एक 'दानी सेठ' या 'परोपकारी धर्मात्मा' ही नहीं मानते, वरन् एक 'संत' या 'सच्चे त्यागी' के रूप में देखते हैं।

गो रक्षा या गो-सेवा—

जमनालाल जी सच्चे आस्तिक और धार्मिक हिंदू थे। इसलिए सभी धर्म सिद्धांतों और आदेशों का पालन करने का वे हृदय से प्रयत्न करते रहते थे। पर वे रूढ़िवादी अथवा अंधश्रद्धालु नहीं थे। इसलिए ऐसे विषयों में श्रद्धा के साथ ही विवेक से भी काम लेते थे। इस दृष्टि से उन्होंने हिंदू-धर्म में गौ की महिमा को समझकर उसका वर्तमान युग में अनुकूल रूप में प्रचार करने का निश्चय किया। वैसे हिंदू-समाज में गौ रक्षा का आंदोलन साठ-सत्तर वर्ष से जोर पकड़ रहा था और देश के विभिन्न स्थानों में सैकड़ों गौशालायें स्थापित करके निराश्रित और लंगड़ी-लूली गायों की रक्षा का प्रयत्न किया जा रहा था। पर यह कार्य-प्रणाली केवल अंध-श्रद्धा पर आश्रित थी, इसलिए लाभकारी के बजाय हानिकारक ही सिद्ध हुई। इससे न तो गायों की नस्ल का सुधार हुआ और न गाय के दूध की उत्पत्ति बढ़ी। गौ रक्षा का जबानी आंदोलन बढ़ता गया, पर देश में गौ-दूध की उत्पत्ति और खपत निरंतर घटती ही चली गई। व्यवसायी और ग्राहक दोनों गाय की अपेक्षा भैंस के दूध को गाढ़ा होने के कारण अधिक पसंद करते थे। इसलिए व्याख्यानों और लेखों में गाय की प्रशंसा करते रहने पर भी व्यवहार में उसकी अवमानना ही होती रही। उसके पालन-पोषण की तरह उपेक्षा का भाव बरतने से उसके दूध की मात्रा और भी घटती गई। लोगों के मुँह से प्रायः सुनने में आता था कि दिन भर में आधा-सेर दूध देने वाली गायों के रखने से क्या फायदा ? क्यों न उसके बजाय भैंस पाली जाए, जो साधारणतः ५-७ सेर दूध देती है ?

गो-समस्या की इस कठिनाई को जमनालाल जी ने अच्छी तरह समझा और कहा कि हमको 'गौ रक्षा' का नहीं, 'गो सेवा' का कार्यक्रम अपनाना चाहिए। यदि गौ का विकास करने का उचित

अवसर दिया जाए, उसकी देख-रेख वैज्ञानिक तरीके से की जाए तो उसको आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाया जा सकता है। तब कोई भी चाहे वह गाय को 'माता' के तुल्य पूजनीय मानता हो या न मानता हो, तो भी वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। योरोप और अमेरिका के निवासी हमारी तरह 'गौ-पूजक' नहीं है और न वे मरने के बाद गाय के द्वारा वैतरणी पार करने की कथा में विश्वास रखते हैं, पर चूँकि वहाँ की गायें प्रतिदिन बीस सेर दूध देती हैं, इसलिए वे उनको बड़े यत्न से पालते-पोसते और आराम के साथ रखते हैं।

जमनालाल जी ने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपना जीवन-क्रम ही बदल दिया। उन्होंने सेवाग्राम के समीप ही 'गो पुरी' की स्थापना की और अपनी विशाल हवेली को छोड़कर, वहीं एक कुटी बनवाकर रहने लगे। काका कालेलकर जब वहाँ जाकर उनसे मिले तो उन्होंने देखा कि "उस कुटी का फर्श कच्चा, कठोर और ऊँचा-नीचा था। फर्नीचर के नाम पर सोने और बैठने के लिए एक लंबा तख्त था। वे वहाँ मूक पशुओं के बीच में रहे, तमाम तकलीफें सहीं और अपना सारा समय गो सेवा में लगा दिया। जब मैं उनसे मिला, तो वहाँ के वातावरण में वे प्रसन्न और संतुष्ट थे।"

एक अन्य लेखक के कथनानुसार "जमनालाल जी को प्रत्येक प्रकार के रचनात्मक राष्ट्रीय उत्थान के कार्यों से प्रेम था, परंतु गो सेवा का काम उन्हें बहुत रुचिकारक प्रतीत होता था। गांधी जी के लिए गो रक्षा एक सिद्धांत था, परंतु जमनालाल जी की निगाह में अंधाधुंध भक्ति के दृष्टिकोण से नहीं, वरन् युक्तिवादी दृष्टिकोण से भी गो सेवा का आंदोलन बहुत महत्त्वपूर्ण था। उनके लिए 'गो-सुधार' का अर्थ था—मानव जाति का सुधार। गो सेवा का अभिप्राय था मानवता की सेवा। जब गायों की नस्ल सुधरेगी, तो खेती सुधरेगी और मनुष्यों को उत्तम भोजन प्राप्त होगा। भारत जैसे देश में, जहाँ शाकाहारी लोगों की बहुत बड़ी जनसंख्या है, गाय के दूध से बढ़कर और कोई पूर्ण और पौष्टिक आहार नहीं। जब इन सब बातों पर सोचा गया तो गो सेवा और भी अनिवार्य प्रतीत हुई।"

यद्यपि 'गो संवर्धन' का कार्यक्रम भी गांधी जी ने ही उठाया था और उन्होंने जमनालाल जी को इस कार्य के करने का आदेश दिया था, तो भी उन दोनों के विचारों में कुछ मतभेद थे। गाँधी जी अहिंसा की दृष्टि से पशुवध के विरोधी थे, पर साथ ही यह भी चाहते थे कि दुर्बल और बीमार पशु राष्ट्र पर आर्थिक भार बनकर न रहें। इसके लिए उन्होंने जीवित तथा मृत पशुओं से खाद तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त करने का विचार प्रकट किया था। गाय का गोबर तथा मूत्र तो यहाँ सदा से उत्तम खाद माना जाता रहा है। गांधी जी ने मृत पशुओं के चमड़े, हड्डी, सींग और मांस से भी अनेक प्रकार के लाभ उठाने की विधि बतलाई।

पर जमनालाल जी एक कदम आगे बढ़कर गौ पालन को आर्थिक दृष्टि से इतना लाभदायक बना देने के पक्ष में थे कि फिर कोई उसे मारने का विचार ही न करे। जिस प्रकार उन्होंने खादी और हरिजन उत्थान के आंदोलनों को व्यवहारिक रूप दिया था। उसी प्रकार वे एक व्यापारी की दृष्टि से गो सेवा के कार्य में भी जुट गये। वे गो पुरी की एक झोपड़ी में रहते हुए गायों को स्वयं स्नान कराते, उनका स्थान साफ करते, चारे-दाने और दूध दुहने की उचित व्यवस्था करते। गो पालन के आधुनिक साधनों का भी उन्होंने अध्ययन किया और उनसे जहाँ तक फायदा उठाया जा सकता है उसकी व्यवस्था की। उनको इस बात का बहुत खेद था कि आजकल गोरक्षिणी सभाएँ और पींजरापोल गलत रास्ते से काम करके बहुत-सा धन खर्च कर डालते हैं और उनके द्वारा 'गौ माता' का कुछ भी वास्तविक हित नहीं होता।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'अखिल भारतीय गो सेवा-सम्मेलन' का आयोजन किया, जिसमें देश भर के बहुसंख्यक गौ-विशेषज्ञों ने भाग लिया। इस विषय के सर्वाधिक प्रसिद्ध ज्ञाता सर दातार सिंह को भी इसमें विशेष रूप से आमंत्रित किया गया। इस सम्मेलन के अध्यक्ष गांधी जी थे और श्री विनोबा जी ने इसका उद्घाटन किया। यह सम्मेलन पर्याप्त सफल हुआ और उसमें विचार-विमर्श करके एक 'अ० भा० गोसेवा संघ' की स्थापना की

गई। यद्यपि इसके सात दिन बाद ही उनकी मृत्यु हो गई, पर फिर भी इस संस्था द्वारा गौओं के हितकारी अनेक कार्य किये गये।

आकस्मिक स्वर्गवास—

यद्यपि जमनालाल जी का स्वास्थ्य अच्छा था और शारीरिक दृष्टि से वे पर्याप्त शक्तिशाली जान पड़ते थे। पर राष्ट्रीय आंदोलन में निरंतर अधिक परिश्रम करते रहने और कई बार की जेलयात्रा में कष्टमय जीवन व्यतीत करने के कारण उनमें आंतरिक निर्बलता उत्पन्न हो गई थी। वे एक प्रसिद्ध धनी व्यक्ति थे और घर पर उनको सब तरह की सुख-सुविधाओं में रहने का अभ्यास था। पर सरकार से विरोध होने पर उन्होंने जेल में किसी प्रकार की रियायत ग्रहण नहीं की, वरन् स्वयं अपनी इच्छा से 'तीसरी-श्रेणी' में रहे। इस प्रकार उन्होंने सत्याग्रही की हैसियत से सब तरह की तकलीफें सहन की और इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर हानिकारक पड़ा। यद्यपि वे स्वयं भी इस बात को समझते थे, पर मातृभूमि की वेदी पर अपना सब कुछ बलिदान करने की इच्छा उनको इसी मार्ग पर प्रेरित करती रही।

दस फरवरी १९४२ को जमनालाल जी गो पुरी से वर्धा आकर चीन के राष्ट्रनायक जनरल चांगकाई शेक के स्वागत तथा निवास की व्यवस्था करने में लगे थे। क्योंकि खबर आई थी कि गांधी जी से भेंट करने वे शीघ्र ही वहाँ आने वाले हैं। उस रात को इसी संबंध में उनकी बातचीत महादेव भाई से होती रही। उन्होंने कहा—"बापू मुझ से गो सेवा का काम लेना चाहते हैं, पर बीच-बीच में ऐसे नये कार्य आ जाते हैं कि मुझे उसे छोड़कर यहाँ आना ही पड़ता है।" महादेव भाई ने कहा—"लेकिन आपको तो संसार के एक महापुरुष को अपना अतिथि भी बनाना है और गो सेवा भी करनी है, फिर क्या हो ?"

दूसरे दिन जब सेवाग्राम में अपने निवास स्थान में बैठे हुये गांधी जी घनश्याम दास बिरला से बातचीत कर रहे थे तो अचानक खबर आई कि जमनालाल को खून का दौरा पड़ा है, कै हुई है और

वे बेहोश हैं। उसी समय वर्धा से एक मोटर गाड़ी उस दवा को लेने आई, जिसे गांधी जी प्रायः खून का दवाब बढ़ने पर लिया करते थे। गांधी जी तुरंत दवा लेकर बिरला जी के साथ वर्धा को रवाना हो गये। उनके मुँह से निकला—"बड़ा गजब होगा, यदि वे जीवित न मिले !" उनकी आशंका ठीक निकली और उनके वर्धा पहुँचने से पहले ही जमनालाल जी का स्वर्गवास हो गया। यह घटना इस प्रकार अकस्मात् हुई कि जिसने सुना, वही भौचक्का रह गया। गांधी जी, जमनालाल जी की पत्नी जानकीबाई और ८० वर्ष की माता बिरडीबाई सब स्तब्ध रह गये और किसी के मुँह से एक शब्द भी कठिनता से न निकल सका।

पर जो कुछ हो चुका, कोई उसे लौटा सकने वाला न था। अब तो यह प्रश्न उठा कि उनका अंतिम संस्कार कहाँ किया जाए ? गांधी जी ने 'गोपुरी' का ही नाम लिया, क्योंकि वे अपना जीवन गो सेवा के लिए ही समर्पित कर चुके थे। गांधी जी स्वयं शोकातुर थे, पर इस समय जमनालाल जी के परिवार वालों को धैर्य बँधाना अपना प्रधान कर्तव्य समझकर, वे बहुत कुछ शांत बने रहे। उस समय जानकी देवी की अवस्था सर्वथा विक्षिप्तों की-सी हो गई थी और वह पति के साथ सती होने की बात कहने लगी। तब गांधी जी ने ही उसे वास्तविक कर्तव्य का बोध कराया।

घनश्यामदास बिरला ने जो उस अवसर पर उपस्थित थे, कहा कि "ऐसे मौके पर हमारे यहाँ कोई शुभ संकल्प करने का रिवाज है।" इस पर जानकीबाई ने अपने हिस्से की सब संपत्ति जमनालाल जी के आरंभ किये गोसेवा कार्य के लिए अर्पित कर दी। पर गांधी जी ने इसे पर्याप्त न समझा और कहने लगे—"अपना सारा धन भगवान को देकर तुम भिखारिन बन गई हो। अब यदि लड़के खिलायेंगे, तभी तुम खाना खा सकोगी। यदि वे न खिलायें तो सेवाग्राम आकर मेरे भिक्षान्न में सम्मिलित हो जाना। परंतु इससे तो उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। तुमको तो वही सब करना चाहिए, जो अब तक जमनालाल करते थे।" जानकी देवी को आश्चर्य हुआ कि क्या ईश्वर उसे इन कामों को कर सकने की शक्ति देगा ? विनोबा

जी ने उन्हें समझाया कि जहाँ शुभेच्छा होती है, वहाँ उसको पूरा करने की शक्ति भी ईश्वर देता ही है।

इस प्रकार एक महान् जीवन का अंत हो गया। यद्यपि उनका जन्म एक गरीब घर में हुआ था, पर भाग्य ने उन्हें अनायास ही एक बड़ा पूँजीपति बना दिया। 'पूँजीपति' शब्द वर्तमान युग में शुभेच्छा का प्रतीक नहीं माना जाता। गरीब-वर्ग तो उसे स्पष्ट शब्दों में 'शोषक' कहता ही है, अन्य लोग भी उनकी अर्थनीति को समाज के लिए कल्याणकारी नहीं बतलाते। कारण यही है कि अधिकांश पूँजीपतियों की दृष्टि में समाज के हित की अपेक्षा अपना 'मुनाफा' ही सर्वोपरि होता है। ऐसे भी पूँजीपतियों की कमी नहीं, जो धन कमाने के लिए हानिकारक वस्तुओं की मिलावट तथा शराब, सिगरेट जैसी घातक वस्तुओं का अधिकाधिक प्रचार करने में भी संकोच नहीं करते। ऐसी दशा में यदि उन पूँजीपतियों में से कोई ऐसा व्यक्ति निकल आवे, जो व्यापार में सत्य व्यवहार करता हुआ अपनी अधिकांश आय लोककल्याण के लिए ही अर्पित कर देता है, तो यह साधारण महत्त्व की बात नहीं है।

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में जमनालाल जी ने जिस प्रकार स्वयं अपने परिवार तथा संपदा को अर्पित कर दिया, उसका मुकाबला करने वाला उदाहरण कठिनता से ही मिल सकेगा। फिर उन्होंने जिस प्रकर व्यापार में असत्य व्यवहार से बचने और देशहित का ध्यान रखा, वह और भी अधिक प्रशंसनीय है। इसीलिए हम उनके चरित्र को देशी-विदेशी सभी पूँजीपतियों के लिए अनुकरणीय समझते हैं। अगर लोग उनकी ही तरह अपने को अपने धन का 'स्वामी' समझने के बजाय 'संरक्षक' (ट्रस्टी) मानें, तो वर्तमान पूँजीवाद के बहुत से दोषों का अंत हो सकता है और सामान्य जनता में पूँजीपतियों के विरुद्ध जो दुर्भावना पाई जाती है, उसका भी अंत हो सकता है। एक विद्वान् के कथनानुसार "परिश्रम करके धन कमाना और फिर उसको अपने सुख अथवा विलास में व्यय न करके परोपकारार्थ देते रहना, किसी तपस्या से कम महत्त्वपूर्ण नहीं

है।'' इस दृष्टि से जमनालाल जी के तुल्य उदाहरण का मिल सकना दुर्लभ है।

पूँजीवाद का वर्तमान स्वरूप और उसका संशोधन—

जमनालाल जी के जीवन से, जो एक बहुत बड़ी शिक्षा मिल सकती है, वह वर्तमान पूँजीवादी-प्रथा के संशोधन से संबंधित है। इस समय संसार के सामने यही सबसे बड़ी समस्या है। एक दृष्टि से इसे आधुनिक युग की समस्त हलचल और असंतोष का मूल कारण कहा जा सकता है। इसके कारण मौजूदा दुनिया दो परस्पर विरोधी और अत्यंत शक्तिशाली गुटों में बँट गई है, जिनके संघर्ष से किसी भी समय प्रलय-कांड का दृश्य उपस्थित हो सकता है। इसलिए लोकमंगल के अभिलाषी और शांतिवादी व्यक्ति निरंतर पूँजीवाद की समस्या पर विचार करते रहते हैं।

वर्तमान युग में यह समस्या सबसे पहले योरोपियन विचारकों के सम्मुख उपस्थित हुई, क्योंकि आज से दो-तीन -सौ वर्ष पहले वहीं पूँजीवाद के ऐसे रूप का उदय हुआ, जिसका आधार गरीबों और निर्बलों का शोषण तथा धन और सत्ता का केंद्रीकरण करना था। यद्यपि आरंभ में यह 'लोकतंत्र' के नाम से आगे आया और इसका उद्देश्य भी प्रजा को तत्कालीन निरंकुश राजाओं और उनके सरदारों तथा जागीरदारों के अत्याचारों से बचाना घोषित किया गया। शीघ्र ही इस मार्ग पर चलने वाले प्रमुख व्यक्तियों को अधिकाधिक आर्थिक लाभ होने से स्वार्थपरता का नशा सवार हो गया। वे नये-नये उपायों द्वारा गरीबों का शोषण करने लगे। पहले जमाने में जब तक सब प्रकार का काम हाथ से होता था, कारखानों के मालिक, मजदूरों और कारीगरों के भरोसे रहते थे और उनके सुख-दुःख का ख्याल भी रखते थे। पर आगे चलकर पूँजीपतियों ने सबसे अधिक ध्यान मशीनों के आविष्कार और विकास पर देना शुरू किया, जिससे हाथ के काम का महत्त्व घट जाय और कारीगर

तथा मजदूर मशीनों का मुकाबला न कर सकने के कारण उनके आश्रित बन जायें।

पूँजीपतियों की मनोवृत्ति बढ़ते-बढ़ते इन दिनों चरम सीमा पर पहुँच गई है और वे राष्ट्र की समस्त संपति का स्वामी अथवा कर्ता-धर्ता अपने को ही समझने लगे हैं। यद्यपि संपत्ति के उत्पादन तथा साधनों की वृद्धि में समाज के सभी सदस्यों का सहयोग होता है। कल-कारखानों का निर्माण, संचालन और बिक्री की व्यवस्था भी बिना जन साधारण के सहयोग के संभव नहीं। पर इस सत्य सिद्धांत की अवहेलना करके पूँजीपतियों ने अनेक अनैतिक उपायों का अवलंबन करके उपार्जन के साधनों तथा समृद्धि के भंडार पर अपना अधिकार जमा लिया और समाज के अधिकांश सदस्यों को उसके न्याययुक्त व्यवहार से वंचित कर दिया। इसी स्वार्थपरता की नीति ने समाज में फूट उत्पन्न करके, उसे अनेक दलों में विभाजित कर दिया और इसके परिणामस्वरूप सर्वत्र अशांति और असंतोष का वातावरण व्याप्त हो गया।

यह ठीक है कि कितने ही पूँजीपति लोक-कल्याण के कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं और शिक्षा, चिकित्सा, चरित्र निर्माण, धर्म प्रचार आदि में बड़ी-बड़ी रकम खर्च करते रहते हैं। अमेरिका के कई धन-कुबेरों ने बीसियों करोड़ की लागत से अस्पताल बनवाये हैं और देश-विदेशों में युवकों की शिक्षा के लिए भी करोड़ों की ही धनराशि खर्च की है। हमारे देश के पूँजीपति अब तक दान के नाम पर तीर्थों तथा बड़े-बड़े धर्मानुष्ठानों में काफी धन व्यय करते हैं। पर अब उनका इस प्रकार का 'परमार्थ' समयोपयोगी सिद्ध नहीं हो रहा है और उससे समाज को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक उठानी पड़ती है। इस प्रकार की आलोचना होने से अब यहाँ के पूँजीपतियों में से कितने ही विद्यालय, चिकित्सालय, वैज्ञानिक प्रयोगशालायें आदि की स्थापना की तरफ ध्यान देने लगे हैं।

पर इन सब लोक कल्याणकारी कार्यों से भी पूँजीवाद के समस्त दोषों का निराकरण नहीं हो सकता। दान-धर्म में अब अपनी आय का एक अंश खर्च कर देने पर भी अपने यहाँ काम करने वाले

मजदूरों तथा अन्य कार्यकर्ताओं के प्रति उनका व्यवहार जैसे का तैसा रहता है। वे हर तरह से अपना मुनाफा अधिकाधिक बढ़ाकर जमीन, जायदाद, कल-कारखाने आदि का परिमाण बढ़ाते जाते हैं। परिणामस्वरूप समाज में आर्थिक वैषम्य उत्पन्न होता है और वर्ग-कलह की वृद्धि होकर जनता की सुख-शांति खतरे में पड़ जाती है।

पश्चिमी देशों में इस परिस्थिति का सुधार करने के लिए समाजवाद और साम्यवाद जैसे आंदोलनों को आरंभ किया गया है। उनके प्रभाव से गरीबों में जाग्रति होती है और वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने को तैयार हो जाते हैं, पर यह मार्ग भी सरल अथवा निश्चित नहीं है। पूँजीपति वर्ग गरीबों से कहीं अधिक साधनसंपन्न होता है। शासन की बागडोर भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तरीके से उसी के हाथ में रहती है। इसलिए वे गरीबों को दबाने के लिए तरह-तरह के उपायों से काम लेते हैं और उनको नये-नये बंधनों में जकड़ते जाते हैं। इससे समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होती है और वह सभ्यता तथा सहयोग के बजाय पाशविक प्रवृत्तियों को अपनाने लगता है।

गांधी जी ने पूँजीवाद और समाजवाद के इन दोषों को अच्छी तरह समझा था। इसलिए अपरिग्रह और परोपकार के प्राचीन भारतीय सिद्धांतों को आधुनिक युग के अनुकूल रूप में प्रचलित करने का प्रयत्न किया था। जमनालाल जी इस कार्य में उनके सबसे बड़े सहयोगी थे। असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्ति गरीब अथवा साधारण आर्थिक स्थिति के थे। इसलिए गांधी जी की बातें सर्वसाधारण की दृष्टि में एक आदर्शवाद ही मानी जाती थीं। पर जमनालाल जी ने स्वयं एक पूँजीपति होते हुये गांधी जी के आदर्शों के अनुसार आचरण करके समाजवाद का एक नया रूप संसार को दिखला दिया। उन्होंने पूँजीपति का धंधा करते हुए अपने कारोबार से संबंधित सब कर्मचारियों के साथ सब प्रकार से न्याययुक्त व्यवहार किया, ग्राहकों के साथ सदैव ईमानदारी का

ध्यान रखा और जो कमाया उस का अधिकांश राष्ट्रोत्थान में खर्च किया।

संपत्ति के संबंध में प्राचीन भारतीय आदर्श यही है। संसार में आदि-ग्रंथ माने जाने वाले 'वेद' स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

"शतहस्तः समाहर सहस्र हस्तः संकिर।"

अर्थात्—"सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से खर्च करो—वितरण करो।" धन के कमाने में दोष नहीं है, पर उसका उपयोग समाज की वस्तु समझकर ही करना चाहिए। संपत्ति समाज में रहकर ही कमाई जा सकती है और सामाजिक वातावरण में ही उसे उपयोग में लाया जा सकता है। किसी निर्जन टापू में रहने वाले व्यक्ति को यदि सोने का पहाड़ या हीरों की खान मिल जाय, तब भी उसका कोई मूल्य नहीं। इसलिए भारतीय मनीषियों ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य इस संसार की वस्तुओं को संग्रह करके घर में बंद करने की चेष्टा न करें, वरन् सब पदार्थों का उपयोग आवश्यकतानुसार करके शेष भाग दूसरों के लिए छोड़ दें, क्योंकि ये समस्त पदार्थ किसी एक मनुष्य ने उत्पन्न नहीं किये हैं, वरन् इनको उत्पन्न करने का श्रेय आदि-शक्ति अथवा समग्र मानव समाज को है। अगर इस सिद्धांत पर सच्चाई से अमल किया जाय तो हम समाजवाद ही नहीं, वरन् उस स्थिति को पहुँच सकते हैं जिसे बंधनमुक्त समाज कहा जा सकता है। जमनालाल जी, गांधी जी के आदेश से इसी मार्ग का अनुकरण करने लगे थे और उसमें सफलता भी प्राप्त करके दिखा दी थी। वह दिन हमारे जीवनकाल में या एक-दो पीढ़ी के पश्चात् ही आ सकता है, जबकि समस्त समाज स्वेच्छा से या परिस्थितियों के वशीभूत होकर इसी मार्ग पर चलने लगे। उस समय लोग जमनालाल जी जैसे महापुरुषों के महत्त्व को अनुभव करेंगे।

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।